# सेवा

## मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

Version 3

2 नवंबर 2019

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह “सेवा” शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

| | | |
|---|---|---|
| Version 0.1 | Draft version created | Roshani Sahu, 20/08/2017 |
| Version 0.2 | Draft version created | Roshani Sahu, 29/05/2018 |
| Version 0.3 | Draft version created | Roshani Sahu, 02/11/2019 |

# सेवा की परिभाषा

परिभाषा:

- परस्परता में परस्पर आवश्यकीय सहायता, तन मन धन से किया गया पूरकता।
- निश्चित सहयोगी प्रक्रिया में, से, के लिए प्रतिबद्धता पूर्वक किया गया, पूरक क्रिया कलाप।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पेज नंबर: 202)

## अनुक्रमणिका

सेवा शब्द को लेकर मध्यस्थ दर्शन वाङ्ग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.


| | | |
|---|---|---|
| 1. | मानव व्यवहार दर्शन | ४ |
| 2. | मानव कर्म दर्शन | ७ |
| 3. | मानव अभ्यास दर्शन | ८ |
| 4. | मानव अनुभव दर्शन | ११ |
| 5. | समाधानात्मक भौतिकवाद | १२ |
| 6. | व्यवहारात्मक जनवाद | १३ |
| 7. | अनुभवात्मक अध्यात्मवाद | १४ |
| 8. | व्यवहारवादी समाजशास्त्र | १५ |
| 9. | आवर्तनशील अर्थशास्त्र | १६ |
| 10. | मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान | १९ |
| 11. | मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या | २१ |
| 12. | जीवन विद्या – एक परिचय | २३ |
| 13. | विकल्प | २३ |
| 14. | जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु | २४ |
| 15. | मानवीय आचरण सूत्र | २५ |
| 16. | संवाद भाग– 1 | २६ |
| 17. | संवाद भाग–2 | २७ |

# सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- उपयोग :– उत्पादन व **सेवा** के लिए प्रयुक्त अर्थ की उपयोग संज्ञा है । **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 17)**
- प्रियाप्रिय, विषय सापेक्ष; हिताहित, शरीर सापेक्ष; लाभालाभ, वस्तु व **सेवा** सापेक्ष; न्यायान्याय, व्यवहार सापेक्ष; धर्माधर्म, समाधान सापेक्ष तथा सत्यासत्य, अस्तित्व में अनुभव सापेक्ष पद्धति से स्पष्ट होता है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 23)**
- सह–अस्तित्व :– परस्परता में शोषण, संग्रह एवं द्वेष रहित तथा उदारता, स्नेह और **सेवा** सहित व्यवहार, संबंध व संपर्क का निर्वाह ही सह–अस्तित्व है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 27)**
- **सेवा** :– उपकार कर संतुष्ट होने वाली प्रवृत्ति एवं प्रतिफल के आधार पर किया गया सहयोग सहकारिता **सेवा** है । **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 27)**
- उपकार प्रधान **सेवा** में उपकार करने की संतुष्टि मिलती है । प्रतिफल प्रधान **सेवा** में केवल प्रतिफल आंकलित होती है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 27)**
- स्वजन, वस्तु व **सेवा** को महत्वपूर्ण और अन्य को गौण समझने वाली प्रवृत्ति की स्वार्थ संज्ञा है । इसी प्रकार परजन, वस्तु व **सेवा** में अधिक महत्व का अनुमान करने वाली प्रवृत्ति व प्रयास को परार्थ की संज्ञा दी जाती है । **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 71)**
- न्याय से पद, उदारता से धन, दया पूर्वक बल, सच्चरित्रता से रूप, विज्ञान व विवेक से बुद्धि, निष्ठा से अध्ययन, कर्त्तव्य से **सेवा**, संतोष से तप, स्नेह से लोक, प्रेम से लोकेश, आज्ञा पालन से रोगी एवं बालक की सफलता एवं कल्याण सिद्ध है.

  **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 103)**
- दायित्व का निर्वाह करने से पोषण अन्यथा शोषण है । प्राप्त दायित्वों में नियोजित होने वाली **सेवा** के नियोजित न करते हुए मात्र स्वार्थ के लिए जो प्रयत्न है एवं दायित्व को अस्वीकारने की जो प्रवृत्ति है, उसको दायित्व का निर्वाह न करना कहते हैं। **(अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 117)**

•

| इकाई | गठन की विशिष्टता | गठन का उद्देश्य | आशित आचरण |
|---|---|---|---|
| मानव | विचार एवं शरीर (2015) अनुभव संपन्न जीवन एवं शरीर (o l d b o o k ) | सुखानुभूति | न्यायसम्मत व्यवहार |
| परिवार | सीमित समझदार व्यक्तियों के समूह का सम्बन्ध प्रधान गठन | समाधान एवं समृद्धि | समाधान सहित **सेवा**, व्यवसाय एवं प्रयोग |
| समाज | सीमित परिवारों का समूह, जिसमे सम्बन्ध एवं संपर्क दोनों सम्मिलित हों. | समृद्धि सहित सत्यता एवं अखण्ड सामाजिकता को आत्मसात करना अर्थ का सदुपयोग– सुरक्षा | जागृति में, से, के लिए प्रचार एवं प्रदर्शन, प्रकाशन तथा प्रोत्साहन। शिक्षा – संस्कार विधि से लोकव्यापीकरण |
| राष्ट्र | राष्ट्रव्यापी जनजाति के समूह का गठन एवं संपर्क के निर्वाह के लिए विधि की प्रधानता। | मानवीयता का संरक्षण प्रत्यक्ष रूप में अर्थ की सुरक्षा। | न्याय पूर्ण व्यवस्था। |
| विश्व | कई राज्यों का समूह जिसके मूल गठन में मानवीयता प्रधान संयोजक तत्व है सार्वभौम–व्यवस्था के अर्थ में | मानवीयता को प्रोत्साहन | सह–अस्तित्व में, से, के लिए. |

**(अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 118)**

- माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं । उदाहरणार्थ शैशवावस्था में केवल बालक का लालन पालन ही माता–पिता का पुत्र–पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं । कौमार्यावस्था में किंचित शिक्षा एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं । इसी अवस्था में आज्ञापालन प्रवृत्ति, अनुशासन, शुचिता, संस्कृति का अनुकरण, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्पादन सहित उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं । सभ्यता के मूल में हर माता–पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिये तन, मन एवं धन से संतान की **सेवा** किया करते हैं । संतान के लिये हर माता–पिता अपने मन में अभ्युदय, समृद्धि तथा संपन्नता की ही कामना रखते हैं, इन सब के मूल में कृतज्ञता की वाँछा रहती है । जो संतान माता–पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयं क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं ।**(अध्याय: 16, पृष्ठ नंबर: 122)**

- भौतिक, रासायनिक वस्तु व **सेवा** में आसक्ति से संग्रह, लोभ व कामुकता; प्राण तत्व में आसक्ति से द्वेष, मोह, मद, क्रोध, दर्प; जीवत्व (जीने की आशा) में आसक्ति से अभिमान, अज्ञान, ईर्ष्या, और मत्सर यह अजागृत मानव की प्रवृत्तियां हैं. सत्य के प्रति निष्ठा से कर्त्तव्य में दृढ़ता, असंग्रह, सरलता, तथा अभयता व प्रेमपूर्ण मूल प्रवृत्तियां सक्रिय होती हैं. **(अध्याय: 17, पृष्ठ नंबर: 152)**
- लाभ :– कम वस्तु व **सेवा** के बदले में अधिक वस्तु व **सेवा** का पाना ।**(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:158)**
- हानि :– अधिक वस्तु व **सेवा** के बदले में कम वस्तु व **सेवा** का पाना ।**(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:158)**
- भक्ति:– भय से मुक्त होने का क्रियाकलाप और श्रम मुक्ति ।

  –भजन और **सेवा** से संयुक्त अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशन क्रिया–कलाप ।

  –भक्ति संपूर्ण निष्ठा की अभिव्यक्ति है । **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:173)**

# सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

( **संस्करण**: 2010, **मुद्रण**:2017)

- मानव की पाँचों स्थितियों (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) में पुण्यात्मा, पापात्मा, सुखी एवं दुखी के साथ व्यवहार करने की नीति–रीति में अपनी–अपनी विशेषतायें दृष्टव्य हैं। यथाक्रम से व्यक्ति की सीमा में पूज्य, तटस्थ, संतोष एवं दया भाव; परिवार की सीमा में गौरव, उपेक्षा, सहकारिता एवं **सेवा** भाव; समाज की सीमा में पुरस्कार, परिमार्जन, सहयोग और सहकार भाव; राष्ट्र की सीमा में सम्मान, दण्ड (सुधार), आश्वासन एवं सहयोग भाव; अन्तर्राष्ट्रीय सीमा में संरक्षण, उद्धार, संवर्धन और परिष्करण भाव पूर्ण रीति–नीति पद्धति, विधि–विधान व्यवहार– आचरण–सम्पन्न जीवन ही सफल अन्यथा असफल है। इसलिये यथा

| | पुण्यात्मा | पापात्मा | सुखी | दुखी |
|---|---|---|---|---|
| व्यक्ति | पूज्य | तटस्थ | संतोष | दयाभाव |
| परिवार | गौरव | उपेक्षा | सहकारिता | **सेवा**भाव |
| समाज | पुरस्कार | परिमार्जन | सहयोग | सहकार भाव |
| राष्ट्र | सम्मान | दण्ड(सुधार) | आश्वासन | सहयोग भाव |
| अन्तर्राष्ट्र | संरक्षण | उद्धार | संवर्धन | परिष्करण भाव |

(**अध्याय**:3, **पृष्ठ नंबर**:13–14)

- उत्पादन और **सेवा** में अर्थ का उपार्जन, अर्थ के सदुपयोग में समृद्धि, संयत उपयोग एवं सद्उपयोग में संतुलन, सार्वभौमिक धर्म में समाधान, सत्य–सत्यता में अनुभव तथा आनन्द प्रसिद्ध है।(**अध्याय**:4, **पृष्ठ नंबर**:23)
- ...सेव्य, **सेवा** विद्या में संपूर्ण संबंध, प्रयोजनों के अर्थ में निर्वाह किया जाना बनता है। फलस्वरुप प्रयोजन का सेवन होता ही है। प्रयोजनों का मुख्य रुप जागृति, व्यवस्था में मानव और आकाँक्षा का प्रमाण ही है।... (**अध्याय**: 16, **पृष्ठ नंबर**:123)

# सन्दर्भ : मानव अभ्यास दर्शन

**(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)**

- प्रत्येक परस्परता में दायित्व समाया हुआ है। यही स्थापित मूल्यों में वस्तु व **सेवा** को अर्पित करता है। सभी अर्पण, मूल्यों के प्रति समर्पण है। यही अपर्ण प्रक्रिया ही कर्तव्य है। व्यवहारपूर्वक यह प्रमाणित होता है कि ऐसा कोई संबंध नहीं है, जिसमें मूल्य न हो और जिसके प्रति दायित्व व कर्तव्य न हो। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:26)**
- सामाजिक मूल्य में, से, के लिए शिष्टता एवं वस्तु व **सेवा** की प्रयुक्ति सफल है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर:35)**
- संबंध और मूल्य

प्रत्येक संबंध में स्थापित एवं शिष्ट मूल्य स्पष्ट व प्रमाणित हैं। जैसे:–

1. माता–पिता के प्रति विश्वास निर्वाह–निरंतरता = गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौम्यता, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** के समर्पण रूप में है।
2. पुत्र–पुत्री के प्रति विश्वास निर्वाह–निरंतरता = ममता, वात्सल्य, प्रेम, सहजता, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** के समर्पण रूप में है।
3. भाई–बहन की परस्परता में विश्वास–निर्वाह–निरंतरता = सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहर्द्रता, सरलता, सौजन्यता, स्नेह, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** अर्पण के रूप में है।
4. गुरु–शिष्य के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता = प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, भावपूर्वक प्रबोधन जिज्ञासा पूर्ति सहित वस्तु व **सेवा**–समर्पण के रूप में है।
5. शिष्य–गुरु के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता=गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता–भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व **सेवा**–समर्पण के रूप में है।
6. पति–पत्नी की परस्परता में विश्वास निर्वाह–निरंतरता = स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहर्द्रता, अनन्यतापूर्वक सद्चरित्रता सहित वस्तु एवं **सेवा** अर्पण के रूप में है।
7. साथी–सहयोगी के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = स्नेह, सौजन्यता, निष्ठापूर्वक वस्तु व **सेवा** प्रदान के रूप में है।
8. सहयोगी–साथी के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सौहर्द्रता, सौम्यता, सरलता, भावपूर्वक **सेवा** समर्पण के रूप में है।
9. मित्र की परस्परता में विश्वास निर्वाह, निरंतरता = स्नेह, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, अनन्यता, सौहर्द्रता भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** समर्पण के रूप में है।**(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर:40–41)**

- सुन्दरता एवं उपयोगिता मूल्य की स्थिरता नहीं है क्योंकि उपयोगिता एवं सुन्दरता स्वयं में एक सी नहीं है, यह सामयिक है, जिसके साक्ष्य में :–

  1. शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधेन्द्रियों में आवश्यकताएं सामयिक हैं।
  2. क्षुधा, पिपासा सामयिक हैं।
  3. संपूर्ण उपयोग सामयिक है।
  4. महत्वाकाँक्षा, सामान्याकाँक्षा से संबंधित उपयोग सामयिक हैं।
  5. विनियम सामयिक है।
  6. वस्तु व **सेवा** का नियोजन सामयिक है।

  इसलिए उपयोगिता व सुंदरता मूल्य सामयिक सिद्ध है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 48–49)**

- श्रम नियोजन, श्रम विनिमय–पद्धति से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी **सेवा** व वस्तु को दूसरी **सेवा** व वस्तु में परिवर्तित करने की सुगमता होती है, जिसमें शोषण, वंचना, प्रवंचना एवं स्तेय की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं जो अपराध परम्परा का वृहद् भाग है। ये संभावनाएं जागृति पूर्वक मानवकृत वातावरण, प्रधानत: व्यवस्था पद्धति एवं शिक्षा से ही निर्मित होती है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:59)**
- कम प्रदाय के बदले में अधिक वस्तु व **सेवा** को पाना लाभ हैयही शोषण का प्रत्यक्ष रूप है। जबकि श्रम नियोजन का परिणाम ही उत्पादन है जिसमें उपयोगिता एवं सुन्दरता मूल्य सिद्ध होता है। श्रम नियोजन से ही समृद्धि होती है न कि लाभ से क्योंकि मुद्रा शोषण पर आधारित वाणिज्य में लाभ–हानि की संभावनाएं होती है। यह दोनों स्थिति उत्पादन या उत्पादन के लिये सहायक नहीं है। लाभ निर्मित पूंजी ही वस्तु विनियम में असंतुलन का प्रधान कारण है। पूंजी अधिक लाभ से निर्मित होती है जो प्रत्यक्षत: शोषण है और यही अधिक लाभ के लिये नियोजित होती है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:64)**
- उत्पादन का सुगमतापूर्वक वांछित वस्तु व **सेवा** में परिवर्तित होना ही विनिमय की चरितार्थता है। लाभ मूलक वाणिज्य प्रक्रिया उसके विपरीत स्थिति का निर्माण करती है। यही सत्यता मानव को श्रम–विनिमय–पद्धति को सर्वसुलभ बनाने के लिये प्रेरित है।**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 65)**
- उत्पादन को दूसरी वस्तु व **सेवा** में बदलने के लिये अपनाई गई सुगम पद्धति ही विनिमय है, जिसकी सफलता के लिये प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक आवश्यकीय वस्तु का सहज–सुलभ होने के लिये केन्द्रों का होना आवश्यक है। उत्पादन–कार्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही उसके सहायक तत्व संरक्षण भी महत्वपूर्ण हैं। संरक्षण के अभाव में सशंकतावश, साधनों के अभाव में उत्पादन सामग्रियों की असंपूर्णतावश, शिक्षा के अभाव में अक्षमतावश, विनिमय के अभाव में दूसरी वस्तु व **सेवा** में परिवर्तित करने के विध्नवश उत्पादन में क्षति होती है। व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप में से उत्पादन एवं उसके सहायक तत्वों को सर्वसुलभ बनाना है। विधि का शुद्ध रूप ही सामाजिक मूल्यों यथा जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य व शिष्ट मूल्य का संरक्षण एवं संवर्धन है। ऐसी शुद्ध व्यवस्था के अंगभूत श्रम नियोजन एवं श्रम–विनिमय–पद्धति द्वारा सफल होने की पूर्ण संभावना है क्योंकि प्रत्येक मानव शोषण के

विरुद्ध है। प्रत्येक मानव न्याय का याचक है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है। प्रत्येक मानव भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान से संपन्न होना चाहता है। साथ ही प्रत्येक वस्तु में निश्चित श्रम नियोजन होता है। प्रत्येक वस्तु का किसी एक वस्तु की अपेक्षा में श्रम मूल्य निर्धारण उपयोगिता मूल्य के आधार पर होता है। प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक स्थान पर सर्वसुलभ बना देना सहज है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 66)**

- शरीर त्यागने के समय में जो **सेवा**एं आवश्यक हैं उसे स्वयं से सम्पन्न करने में असमर्थता पायी जाती है इसका तात्पर्य चैतन्य इकाई में किसी असमर्थता से नहीं यह केवल शरीर चालन योग्य न होने से है। ऐसे समय में अपनत्व सहित अपनों की **सेवा** आकांक्षित एवं वांछित होती है। यही आकाँक्षा एवं वाँछा की पूर्णता मरणोंत्तर जीवन के लिए उपहार है तात्पर्य शरीर त्यागने के अनन्तर स्वभाव गति के लिए ये **सेवा**एं सहायक तत्व हैं क्योंकि मानव जीवन में प्रधानतः मानव मानव के आचरण, **सेवा** एवं व्यवहार से आवेशित होते हुए तथा आवेश से मुक्त होकर स्वभावगति में अवस्थित होते हुए देखा जाता है।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 109)**
- **सेवा**, आचरण एवं व्यवहार ही मानव मानव के प्रति वातावरण निर्माण करने का प्रधान उपादेयी तत्व है।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:110)**
- शरीर कष्ट के परिहारार्थ समुचित चिकित्सा एवं **सेवा** समर्पण, वैचारिक समस्या परिहार योग्य व्यवहार एवं आचरण पूर्ण वातावरण से मरणोत्तर जीवन के लिए उत्तम संस्कार की स्थापना होती है। जीवन के अमरत्व एवं शरीर के नश्वरत्व एवम् व्यवहार के नियम संबंधी संबोधन, प्रबोधन प्रक्रिया से मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार की स्थापना होती है। मरणासन्न व्यक्ति में अपनत्व के प्रति विश्वास को स्थापित करने तथा अनिवार्य **सेवा**ओं से सम्पन्न करने से वेदना विहीन मृत्यु घटना भावी होती है। फलतः मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार की स्थापना होती है।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:111)**
- शैशवावस्था में जिस प्रकार प्यार और स्नेहपूर्ण **सेवा**–सुश्रुषा अनिवार्य है इसी प्रकार मरणासन्नावस्था में भी अनिवार्य है। यही मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार को स्थापित करता है। शरीर त्यागने के अनन्तर उनके जीवन की चरितार्थता, गौरव एवं सम्मानात्मक घटना, व्यक्तित्व–चारित्रय–स्मरण एवं सद्गुणों का वर्णन किया जाना मरणोत्तर जीवन में सुसंस्कारों का कारण होता है।**(अध्याय7:, पृष्ठ नंबर:111)**
- वस्तु मूल्य का आदान–प्रदान वस्तु व **सेवा** के रूप में, शिष्ट मूल्य का आदान–प्रदान मुद्रा, भंगिमा व अंगहारपूर्वक वस्तु के अर्पण एवं **सेवा** के रूप में तथा स्थापित मूल्य का आदान–प्रदान शिष्ट मूल्य सहित व्यंजनीयता के रूप में है।**(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:141)**
- मानव, मानव–प्रकृति के साथ स्थापित मूल्यों का निर्वाह शिष्ट मूल्यों सहित मानवीयता पूर्ण जीवन में करता है। यह प्रमाण सर्वदा दृष्टव्य है। आवश्यकतापूर्वक ही कला मूल्य एवं उपयोगिता मूल्य की स्थापना होती है। साथ ही उपयोग, वितरण और **सेवा**, समर्पण तथा ग्रहण क्रिया में वे प्रयोजित होते हैं।**(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:149)**

# सन्दर्भ : मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

Not Found

# सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण: 2009)

- जो लोग सरकारी **सेवा** में अर्पित रहते है, उनके अनुसार हम **सेवा** कुछ भी करें, जैसे भी करें, अगर **सेवा** नियंत्रण कानून के प्रति कार्यों में वफादार रह सकें, तो किसी भी कार्य का परिणाम, उसकी जिम्मेदारी, किसी शासकीय अधिकारी एवं कर्मचारी पर न हो– यही मुख्य रूप से सुविधाजनक नौकरी की प्रवृत्ति कार्य करती दिखाई पड़ती है। व्यसनों के चंगुल में जो नहीं हैं, उन लोगों का आहार अल्पाहार जैसा ही है। जो पर– पुरुष, पर–नारी, नशाखोरी, जुआखोरी और विविध प्रकार के नृत्यों में लिप्त रहते हैं, उन लोगों के आहार कर्म को देखने पर पता लगता है कि ये कुछ ज्यादा खाते है। पहले वाले आहार में रहने वाले सादगी में रहना मानते हैं। उससे भी अधिक सादगी में रहने वालों को भी देखा गया है। कम से कम घर को चमकाएँ रखें, कम से कम खाएँ और सामान्य रूप में कपड़ा पहनें, टी.वी. रहते हुए उचित कार्यक्रम, जिन्हें वे पावनग्रंथ रचित मानते हैं, ऐसे कार्यक्रम को देखते हैं। इनमें से कोई सुविधावादी सरकारी **सेवा** में भागीदारी निर्वाह करते हुए दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में सर्वाधिक समानता जैसी कोई चीज हैं, जैसा कुछ ऊपर चित्रण किया गया है, उनका वर्गीकरण करने पर यह स्पष्ट बात दिखती है–... **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:153)**
- स्वधन का स्वरूप है:– प्रतिफल, पारितोष, पुरस्कार से प्राप्त धन। प्रतिफल वह वस्तु हैं – प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन करने के फलस्वरूप उपयोगिता, सुन्दरता (कला) मूल्यों सहित वस्तुएँ जो उपलब्ध होती हैं और की गई **सेवा**ओं के प्रतिफल में प्राप्त वस्तु पुरस्कार, किसी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति के फलस्वरूप में प्राप्त वस्तु हैं। पारितोष, स्नेह मिलन उत्सव को अथवा उत्सव सहज विश्वास के अभिव्यक्ति सहज रूप में प्राप्त वस्तु हैं। जैसे बुजुर्गों से मिलने से, बच्चों से मिलने से, जन्म दिवस, आनंद उत्सव में अर्पित वस्तुएँ पारितोष के रूप में गण्य होती हैं। प्रसन्नता का उत्सव सहित अर्पित वस्तु पारितोष हैं। इस प्रकार से स्वधन का स्वरूप स्पष्ट है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:311)**
- व्यापार मूलत: उत्पादन नहीं हैं, जबकि उत्पादन और उपभोक्ता के बीच में सर्वाधिक पवित्र **सेवा** मानकर जनमानस ने स्वीकारा है। इसका प्रमाण है व्यापारी ने जो दाम लेकर जिस वस्तु को बेच लिया, उसका विश्वास प्रत्येक मानव करता आया है। अभी भी सर्वाधिक लोग विश्वास करते हैं। **(अध्याय:11, पृष्ठ नंबर:351)**

# सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- तप में जो कुछ स्वीकृतियाँ विभिन्न समुदायो में बनी है वे सब अपने अपने में एक बेहतरीन ढाँचा–खाँचा है। जो सामान्य जन के लिए कठिन है। ऐसे स्वरूप को बनाए रखना ही तप का फल माना गया। उसके साथ अपने ढंग की सम्भाषण की शैली, स्वर्ग में सुख मिलने का उपदेश, फलस्वरूप सम्मान पात्र बनने वाले भी बढ़ते रहे सम्मान करने वाले भी बढ़ते रहे। सिलसिला अभी भी जोर शोर से देखा जा रहा है। कुल मिलाकर आदर्श पूर्ण व्यक्तित्व अपने आप में सामान्य लोगो के लिए कठिन सा लगने लगा। सबके लिए सुलभ न लगना, जिनके सान्निध्य से **सेवा** से पुण्य मिलने का आश्वासन होना, मनोकामना पूरी होने का आश्वासन होना इसी चौखट को हम आदर्श कहते है। आदर्श का सम्मान सुदूर विगत से होते आया है, आज भी होता है। इसमें विचारणीय मुद्दा है आदर्शो का प्रयोजन फल लोकव्यापीकरण न होना, उपकार कैसे होगा, उपकार विधि  का लोकव्यापीकरण मुद्दा होना है कि नहीं इस पर जनचर्चा की आवश्यकता बनी हुई है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:99)**
- (पांचवे सोपान)– पाँचवी कड़ी के रूप में स्वास्थ्य संयम होना पाया जाता है। इस क्रम में विविध प्रकार के व्यायामों की व्यवस्था रहेगी, साथ में एक बहुत अच्छा चिकित्सा केन्द्र बना रहेगा। जिसमें आकास्मिक घटनाग्रस्त, दुर्घटना ग्रस्त और असाध्य रोगो को शमन करने की व्यवस्था रहेगी। यह प्रौद्योगिकी के बलबूते पर सम्पन्न होगी। इसमें कार्यरत जितने भी विद्वान होगे, ये सब स्वयं स्फूर्त विधि से **सेवा** उपकार के रूप में चिकित्सा कार्य को सम्पन्न करेंगे। यह परिवार वैभव का अनुपम देन रहेगा। इन सभी कार्य व्यवहार के आधार पर क्षेत्र सभा का वैभव अति शोभा सम्पन्न, गरिमा सम्पन्न, प्रयोजन सम्पन्न विधि से होना पाया जायेगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:120)**

# सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- जहाँ तक स्वर्ग की बात है इसे, इस धरती से भिन्न स्थली में संजोने का वांग्मयों में प्रयत्न किया । उन–उन लोक में कोई देवी–देवता का होना और उन्हीं के आधिपत्य में उनका सौन्दर्य और सुख रहने का विधि से बताया गया है । इन वांग्मयों में स्वर्ग को सर्वाधिक सम्मोहनात्मक और आकर्षक विधियों से सजा हुआ बताया गया है वहाँ पहुँचने के लिए जो ज्ञात स्थिति है वह पुण्य ही एक मात्र पूंजी बताई गई है । पुण्य को पाने के लिए स्वार्थी को परमार्थी होना आवश्यक बताया । अतिभोग–बहुभोगशीलता गलत है । इसी के साथ–साथ स्वर्ग की अर्हता को पूरा करने के लिए त्याग का उपदेश दिया गया। ज्यादा से ज्यादा सुख–सुविधावादी वस्तुओं का दान योग्य पात्रों को करने से स्वर्ग में अनंत गुणा सुख सुविधाएं मिलने का आश्वासन किताबों में लिखा गया । ध्यान, स्मरण, कृत्यों को पुण्य कमाने का स्त्रोत बताया गया । इसी के साथ–साथ अवतारी आचार्य, गुरू, सिद्ध, आश्वासन देने में समर्थ व्यक्तियों का सेवा, सुश्रुषा, उनके लिए अर्पित दान, स्तुति, कीर्तन ये सब पुण्य कमाने का विधि बताए । इसी के साथ–साथ परोपकार, जीव, जानवर, पशु पक्षीयों के साथ प्रेम, फूल–पत्ती, पेड़ के साथ दया करने को भी कहा । साथ ही मन को धोने और स्थिर करने की बातें बहुत–बहुत कही गयी है । इन सभी उपदेशों का भरमार रहते हुए भी भय, प्रलोभन और आस्थावादी कृत्यों से अधिक मानव परंपरा में इस समूची धरती में और कुछ होना देखने को नहीं मिला । अर्थात उपदेश के रूप में जो बातें कहते आये हैं उसके अनुरूप कोई प्रमाण होता हुआ देखने को नहीं मिला । इसी समीक्षा के आधार पर ही ''अनुभवात्मक अध्यात्मवाद'' की परमावश्यकता को स्वीकारा गया । (अध्याय:1, संस्करण:2009, पृष्ठ नंबर:3–4)

# सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- स्वधन :– प्रतिफल, पारितोष और पुरस्कार से प्राप्त धन। प्रतिफल रूपी स्वधन श्रम नियोजन और **सेवा** के प्रतिफल के रूप में देखा गया। श्रम नियोजन की नित्य संभावना और स्वरूप को सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बंधी वस्तुओं को पाने की विधि से किया गया कुशलता, निपुणता, मानसिकता और विचार सहित किया गया हस्तलाघव कार्यकलाप। परस्पर **सेवा** का तात्पर्य यही है बिगड़े हुए वस्तु, यंत्रों, मानव तथा जीव शरीरों को सुधारना। इस विधि से श्रम नियोजन और **सेवा** दोनों ही स्पष्ट है। इन क्रिया कलाप के प्रतिफल में सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएं उपलब्ध होना ही सम्पूर्ण प्रतिफल कार्यकलाप है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:160)**
- **सेवा** :– उत्पादन–कार्य में भागीदारी ही श्रम नियोजन का प्रधान अवसर, संभावना व आवश्यकता है क्योंकि परिवार सहज आवश्यकता, शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के अर्थ में उत्पादन का प्रयोजन स्पष्ट होता है। इनमें आहार, आवास, अलंकार और दूरदर्शन, दूरश्रवण और दूरगमन संबंधी वस्तु व उपकरण गण्य हैं। आवास, अलंकार और दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन संबंधी उपकरणों के सम्बंध में स्वाभाविक रूप में ही मतभेद विहीन होना पाया जाता है। जहाँ तक आहार संबंधी बात है शाकाहार–मांसाहार भेद से पूर्ववर्ती समय काल युगों से अभ्यस्त होना पाया गया। इस मुद्दे पर यह देखा गया है मानवीयतापूर्ण समझदारी और शिष्टता के योगफल में जीने की कला प्रादुर्भूत होता ही है। जिसमें से एक आयाम आहार प्रणाली एवं वस्तुओं का चयन है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:160)**
- शाकाहार सदा ही आवर्तनशीलता, ऊर्जा संतुलन, उर्वरक कार्यों में गुणवत्ता के आधार पर सूत्रित रहता है। कृषि कार्यों के आधार पर पशुपालन, पशुपालन के आधार पर कृषि कार्य में पूरकता स्वाभाविक रूप में देखा गया है। इसी के साथ–साथ मानवकृत वातावरण का संतुलन, नैसर्गिक संतुलन में भागीदारी भी सह–अस्तित्व सहज कार्यकलापों का एक अविभाज्य वैभव रहा है। ये सब पूरक विधि से ही प्रमाणित हो पाता है। हिंसा, शोषण और दोहन विधि से पूरकता, आवर्तनशीलता प्रमाणित नहीं हो पायी है। अतएव मानवीयतापूर्ण परंपरा स्वायत्तता पूरकता व आवर्तनशीलता का संतुलित संगीत विधि से ही समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमणित करता है। यह सर्वमानव में स्वीकृत है। इस प्रकार हम मानव प्रतिफल के रूप में कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, हस्तकला, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग और लघु–गुरु उद्योग पूर्वक सामान्याकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बंधी वस्तुओं को श्रम नियोजन और **सेवा** पूर्वक प्रतिफल के रूप में पा सकते है।**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:164–165)**

# सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- अभी तक आर्थिक कार्यक्रमों को सभी समुदाय परंपराएँ झेलते हुए सदियों–युगों को बिताया है। प्रधानतः आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर ही प्रदूषण और द्रोह–विद्रोह–शोषण–युद्ध स्थापित होते हुए आया है। इसके साथ अर्थात् आर्थिक मजबूती और कमजोरी (ज्यादा–कम) के आधार पर नस्ल, रंग, संप्रदायों का भी पुट लगाकर जिसको संस्कृति का नाम देते हुए परंपराएँ आर्थिक रूप में ऊंचाई को पाने की होड़ में ही चलता आया। इसी में वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकारना हुआ। फलस्वरूप विभिन्न समुदायों ने अपने–अपने ढंग से विशेषकर युद्ध के आधार पर ही राज्य का नाम देने में बाध्य हुए। इस धरती में अधिकांश संख्या में मानव आर्थिक मजबूतियों पर संस्कृति को पहचानने की कोशिश की। इसी बीच एक सभ्यता को भी पहचान लिया। संस्कृतियाँ जो आर्थिक आधार पर बनती आईं खाना, कपड़ा, नाचे, गाना, विवाह आदि घटनाओं के तरीके के रूप में उपभोक्तावादी मानी गईं। सभ्यता को विलासिता के आधार पर पहचाना गया। युद्धभिलाषा से बनी हुई सौंपी गई कार्य विधाओं को, अधिकारों को निर्वाह करना। इन्हीं के तर्ज पर चलने वाले आदमी को भी सभ्य व्यक्ति माना गया। फलस्वरूप ऐसी सभ्यता संस्कृति पर आधारित साहित्य–कला पूर्णतया भय और प्रलोभन पर आधारित रहा। और भय को प्रदर्शित करने के लिए अपराधिक वर्णन प्रधान रहा। प्रलोभन के लिए श्रृंगार और कामुकता का वर्णन रहा है। ऐसी समुदाय परंपरा और देशों में जो ईश्वरवाद उदय हुआ, वह भी युद्ध विधा को स्वीकारा। आस्था केन्द्रों को निर्मित किया। अंततोगत्वा युद्ध प्रभावी–युद्धगामी मानसिकता से बनी संस्कृतियाँ यथावत् बनी रहीं। इसी बीच कुछ देशों में अध्यात्मवाद का बोलबाला हुआ। अध्यात्मवादी विधा में भी आस्थाएँ स्थापित हुईं। व्यक्तिगत उपासना कल्याण स्वान्तः सुख और स्वर्ग के आधार पर साधना क्रियाकलाप के उपदेशों की भरमार होती रही। आस्थाओं में भीगी हुई मानसिकताएँ अधिकांश रूप में युद्ध को नकारता रहा। द्रोह–विद्रोह–शोषण को अपराधी कार्य मानता रहा। ऐसे मानसिकता के लोग सदा ही बर्बरता से अर्थात् आक्रमण से, आक्रमणकारी रूख से दूर रहने की कोशिश करते रहे। फिर भी युद्ध घटना को नकार नहीं पाया। उसे एक भावी मानकर ही चलना पड़ा। इसमें संस्कृतियाँ विशेषकर आस्था, उपासना और अभ्यासपरक रही है। इनकी सभ्यताएँ आस्था और **सेवा** के आधार पर जन्मते आया। यह भी शनैः–शनैः वस्तु और वस्तुओं के विपुलता की ओर दिशागामी रहे। आस्थावाद भी अथवा अध्यात्मवाद भी समुदाय, श्रेष्ठता, अंतर्विरोध जैसी जकड़न में जकड़ते ही आया। ये साहित्य कला को भक्ति और विरक्ति प्रवृत्ति के आधार पर सर्जन किए। इसी भक्ति और विरक्ति में अभिभूत होने के लिए भक्ति रसोत्पादी मुद्रा, भंगिमा, भाषा, भाव, अंगहार क्रमों से संप्रेषणा विधाओं को परिकल्पित प्रदर्शित किए। यही क्रम से श्रृंगार, हास्यवादी रसों में चलकर वीर और वीभत्स विधाओं में पहुँच पाए। जो भौतिकवादी विधा से आद्यंत कला–साहित्य रहा। इस प्रकार अध्यात्मवादी चरित्र जो भक्ति और विरक्ति का छापा लेकर चली वह अपने कलाविधा में पहुँचकर यथास्थिति और

व्यवहारिक प्रासंगिता अर्थात् यथास्थिति में जो व्यवहार गुजरी उसकी प्रासंगिकता को स्वीकारते हुए परिवर्तनों को स्वीकार लिए। ऐसे परिवर्तन सदा–सदा भय और प्रलोभन की ओर झुकता ही गया। भक्ति प्रदर्शन में भी भय और प्रलोभन का पुट रहा है। इस प्रकार मानव सभ्यता और संस्कृति अंततोगत्वा भय–प्रलोभन में डुबता ही रहा। विधि, व्यवस्थाएँ, भय और प्रलोभन से ही स्थापित रहा। क्योंकि सभी समुदायों, सभी देश, सभी राज्यों में भय और प्रलोभन का ही बोलबाला रहा। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:126–128)**

- “परिवार और व्यवस्था अविभाज्य है। परिवार हो, व्यवस्था नहीं हो और व्यवस्था हो परिवार नहीं हो, ये दोनों स्थितियाँ भ्रम का द्योतक है।”... हर परिवार में कुछ संख्यात्मक व्यक्तियों को और उनके परस्परता में **सेवा**, आज्ञा पालन, वचनबद्धता को पालन करता हुआ, निर्वाह किया हुआ भी उल्लेखित है, दृष्टव्य है। इनमें श्रेष्ठता की उचाइयाँ भी उल्लेखों में दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी आदर्श का गति अनेक नहीं हो पायी। यही बिन्दु में हम और एक तथ्य पर नजर डाल सकते हैं। बहुतायत रूप में अच्छे आदमी हुए हैं और अच्छी परम्परा नहीं हो पायी। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:183–184)**
- मानवीय शिक्षा–संस्कार से स्वायत्त मानव, स्वायत्त मानवों से स्वायत्त परिवार, स्वायत्त परिवार व्यवस्था से स्वायत्त ग्राम परिवार व्यवस्था, ग्राम समूह परिवार व्यवस्था क्रम में विश्व परिवार व्यवस्था को पाना सहज है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा की संपूर्णता अपने आप में जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अपने आप का तात्पर्य मानव अपना ही निरीक्षण–परीक्षणपूर्वक ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, आचरण सम्पन्न होने से है। दूसरी विधि से अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में परमाणु में विकास, गठनपूर्णता, जीवनी क्रम, जीवन का कार्यकलाप, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति, क्रियापूर्णता उसकी निरंतरता और प्रामाणिकता (जागृति पूर्णता) उसकी निरंतरता दृष्टापद से है। इस प्रकार मानवीय शिक्षा का तथ्य अथ से इति तक समझ में आता है। इसी समझदारी के आधार पर हर मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप स्वायत्त परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक हम अच्छी तरह से सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अनुभव कर सकते हैं। इस विधि से **सेवा**, व्यवस्था के अंगभूत कर्तव्य के रूप में, व्यवस्था दायित्व के रूप में, उत्पादन आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के रूप में, परिवार व्यवहार सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन अर्पण, समर्पण और उभयतृप्ति के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। यह अधिकांश मानव में अपेक्षा भी है। इसी विधि से धरती की संपदा संतुलन विधि से सदुपयोग होना स्वाभाविक है, अर्थ का सदुपयोग होना ही आवर्तनशीलता है।**(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:190–191)**

- ग्राम के कुछ आयाम निम्नानुसार होंगे।

    1. कृषि
    2. पशु–पालन
    3. वन व वनोपज
    4. खनिज
    5. हस्त शिल्प
    6. ग्राम शिल्प
    7. कुटीर उद्योग
    8. ग्रामोद्योग
    9. सेवा

**सेवा** :–धोबी, नाई, साइकिल, रेडियो, टी.व्ही., कृषि यंत्रों व अन्य यंत्रों की मरम्मत, सुधारने के लिए कुछ व्यक्तियों को लगाया जायेगा। यहां प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, उन्हें उपलब्ध कराया जायेगा। इनके द्वारा लिया गया **सेवा** का प्रतिफल को, ग्राम सभा द्वारा तय किया जायेगा। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:273,279)**

# सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- भक्ति : भजन और **सेवा** की संयुक्त अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन क्रिया कलाप को भक्ति के नाम से जाना जाता है। भजन का तात्पर्य भय से मुक्त होने के क्रिया–कलाप से है। इसका सकारात्मक स्वरूप विश्वास पूर्ण विधि से, कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत कारित, अनुमोदित प्रणालियों से किया गया क्रिया–कलाप।

  **सेवा** का तात्पर्य है – आवश्यकता, उपकार, कर्तव्य, दायित्व प्रणालियों से किया गया कार्यकलाप। इसमें सेवनीय वस्तु, विश्वास और सभी मूल्यों के साथ परावर्तित रहता है। ऐसी सहजता और विश्वास निरंतरता की पुष्टि है। यह तन्मयता का भी आधार है। तन्मयता रसों में तदाकार होना पाया जाता है। सम्पूर्ण मूल्य ही रस स्वरूप हैं, जिनका आस्वादन मन में होना, एक स्वाभाविक क्रिया है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:43)**

- "सेवक (सहयोगी) – "कर्तव्य

  परिभाषा : सहयोगी :– पूर्णता अथवा अभ्युदय के अर्थ में मार्गदर्शक अथवा प्रेरक के साथ–साथ अनुगमन करना, स्वीकार पूर्वक गतित होना।

  कर्तव्य :– (१) प्रत्येक स्तर में प्राप्त सम्बंधों एवं सम्पर्कों और उनमें निहित मूल्यों का निर्वाह। (१) जिस कार्य को करने के लिए स्वीकार किए रहते हैं, उसे करने में निष्ठा को बनाए रखना।

  प्रत्येक व्यक्ति किसी का सहयोगी या किसी का साथी है ही। सम्पूर्ण मूल्यों और सम्बंधों का निर्वाह स्वयं स्फूर्त **सेवा** है। इस तथ्य के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति का परस्परता में सम्बंध व मूल्यों का निर्वाह करना ही कर्तव्य है। इसी विधि से प्रत्येक व्यक्ति किसी के लिए साथी है, किसी के लिए सहयोगी है। इस प्रकार दायित्व और कर्तव्य सहज निर्वाह ही **सेवा** है। यही मूल्यों का आस्वादन भी है। दायित्व के रूप में साथी (स्वामी) कर्तव्य के रूप में सहयोगी (सेवक) का स्वरूप स्पष्ट है। दायित्व का व्यवहार कार्य रूप स्वयं स्फूर्त विधि से होना पाया जाता है। हर कार्य–व्यवहार लक्ष्य सहित सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय–तृप्ति संतुलन, नियंत्रण के रूप में सार्थक होना पाया जाता है। कर्तव्य के रूप में **सेवा** को पूर्ण कर पाना, सहयोगी के संतोष का स्रोत है। इस कर्तव्य में, निष्ठा का पालन हो, यही सहयोगी, के लिये प्राप्त मार्गदर्शन की सफलता है। मानवीय सम्बंधों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह के रूप में **सेवा** है। स्वयं स्फूर्त होने तक के लिए मार्गदर्शन पाना, आवश्यक है, स्वयं स्फूर्त कर्तव्य निष्ठा का द्योतक है। सम्पूर्ण **सेवा**ओं में उसका स्वतः स्फूर्त होना व उसके मार्गदर्शन की आवश्यकता, उसके अंतः बाह्य कर्तव्यों में सहज गति के रूप में पाया जाता है।

  सामाजिक सम्बन्ध (अर्थात मानव सम्बंधों) के आधार पर, व्यवसाय सम्बन्ध, सफल होने की व्यवस्था है। केवल व्यवसाय सम्बंध के आधार पर, मानव सम्बन्ध एवं मूल्यों की पहचान नहीं हो पाती। व्यवसाय सम्बन्ध के लिए

रासायनिक भौतिक वस्तुएं हैं जो मूलतः प्राकृतिक अथवा रूपात्मक अस्तित्व में, से निश्चित अवस्था के रूप में वर्तमान है। उस पर श्रम नियोजन पूर्वक, उत्पादित वस्तुओं में उपयोगिता अथवा कला मूल्य को स्थापित किया जाता है। वर्तमान तक लाभोन्मादी मानसिकता के आधार पर सम्पूर्ण व्यवसाय के निर्भर होने के फल स्वरूप (अथवा प्रलोभन मूल्यांकन के फलस्वरूप) यह विफल होते आया। जबकि अस्तित्व में लाभ से इंगित वस्तु नहीं हैं और न ही उस भय और प्रलोभन की सत्ता है। अस्तित्व में सम्पूर्ण व्यवस्था नियम– निरंतर, नियम प्रवर्तन, नियम–नियंत्रण, नियम–न्याय संतुलन, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन के रूप में, सार्वभौम है।

इसी के साथ पूरकता विधि क्रम में, उदात्तीकरण, विकास, जागृति देखने को मिलती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सभी समुदाय परंपराएं भ्रमवश ही लाभ, प्रलोभन तथा भय के दलदल में फंस गई हैं। इसका समाधान मूल्यों पर आधारित मूल्यांकन है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन है, संग्रह के स्थान पर आवर्तनशील अर्थव्यवस्था है, सुविधा, भोग, अतिभोग के स्थान पर उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता है। इस आधार पर साथी सहयोगियों का कर्तव्य व दायित्व, व्यवहृत होना ही है, जो समीचीन है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:61–62)**

- विवाह सम्बन्ध को पति–पत्नी सम्बंध के नाम से जाना जाता है। मानव, मानव से पहचान, निर्वाह करता है, जहां **सेवा** ली जाती है। सभी सम्बन्ध परिवार के ध्रुव है। परिवार में एक से अधिक व्यक्तियों का विश्वास पूर्ण सम्मिलित उत्पादन कार्य करना तथा सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह रूपी व्यवहार करना सुलभ होता है। प्रत्येक सम्बन्ध निश्चित ध्रुव है। जैसे माता–पिता, पुत्र–पुत्री, स्वामी–सेवक, गुरू–शिष्य, भाई–बहिन, मित्र, पति–पत्नी। सम्पूर्ण सम्बन्ध नियति सहज रूप में वर्तमान रहते हैं। इनके प्रति जागृत होना एक अनिवार्य स्थिति है। जागृत और जागृति–पूर्ण कार्य–व्यवहार, विन्यास होना सहज है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:100)**
- सम्पूर्ण सम्बन्धों में दया का प्रवाह होता है। मनुष्य, मनुष्य के साथ, सम्बन्धों को जब पहचानता है तब **सेवा**, अर्पण–समर्पण करने की उमंग अपने आप उमड़ती है। शांतिपूर्ण मानसिकता के धरातल पर ही ऐसा उद्गम होना पाया जाता है। यह केवल व्यक्ति में ही नहीं, परिवार समुदाय तक भी ऐसे कार्य–कलापों को देखा गया है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य शान्ति कामी और गामी है। गामी होने के लिए किसी परिवार, शिक्षा, राज्य व धर्म संस्थाओं में अपने को अर्पित करता है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:123)**
- सौजन्यता :– (1) सहकारिता, सहभागिता, सहयोगिता, पूरकता। (2) पूरकता विधि से ही विश्वास सहज प्रमाण संपन्न होता है। पूरकता हर परस्परता में समीचीन है। मानव सहज परस्परता, नैसर्गिकता सहज परस्परता नित्य विद्यमान है। रासायनिक रचनाओं में विकास का अभिप्राय है। मानव की पहचान, शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में होना स्पष्ट हो चुकी है। जिसमें से शरीर के संबध में विकास, जीवन के संबध में जागृति अपेक्षित है। कुछ स्थानों पर विकास शब्द से शरीर व जीवन का संयुक्त तात्पर्य भी है। विश्वास मूलतः स्वयं में, से, के लिए होना अनिवार्य स्थिति है। (3) स्वयं में विश्वास होना ही, सौजन्यता पूर्ण अभिव्यक्ति है। सौजन्यता, अपने आप में, (सुहृदय का तात्पर्य मानवीय लक्ष्यों, विचारों, व्यवहार और कार्य मानसिकता और कार्यक्रम से है।) सुहृदय सूत्र से अनुप्राणित प्रस्तुति है। **सेवा**, अर्पण, समर्पण, जिज्ञासा और स्वीकृतियां हैं। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:136)**

# सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

**(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)**

- उदारता = स्वयं जैसे और अधिक श्रेष्ठता में–से–के लिए किये गये तन–मन–धन का अर्पण–**सेवा**–समर्पण

  अर्पण का तात्पर्य तन व धन से की गई **सेवा**, तन–मन–धन से किया गया उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता समर्पण है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:52–53)**

- आचरण में न्याय

  मानवीयता पूर्ण आचरण

  पुत्र–पुत्री का माता–पिता के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता:–गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौम्यता, अनन्यता भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  माता–पिता का पुत्र–पुत्री के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता:– ममता, वात्सल्य, प्रेम, आदर, सहजता, अनन्यता भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  गुरु शिष्य के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, आदर भावपूर्वक प्रबोधन प्रक्रिया सहित वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  शिष्य गुरु के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  बहन–भाई भाई–बहन के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहर्द्रता, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  मित्र मित्र के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– स्नेह, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, अनन्यता, सौहर्द्रता भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  साथी सहयोगी के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता:– स्नेह, सौजन्यता, निष्ठापूर्वक वस्तु व **सेवा** प्रदान रूप में

  सहयोगी साथी के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सौहर्द्रता, सौम्यता, सरलता भावपूर्वक वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

  पति पत्नी के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहर्द्रता, अनन्यता पूर्वक सद् चरित्रता सहित वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

पत्नी पति के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहर्द्रता, अनन्यता पूर्वक सद् चरित्रता सहित वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में

ये सभी स्वयं स्फूर्त–विधि से व्यवस्था व समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है ।

उक्त सम्बन्धों के सदृश्य मामा–चाचा–भाई–मित्र और मामी–चाची–बहन–सहेली के रूप में पहचान सम्बोधन दूर–दूर तक अथवा इस धरती के सम्पूर्ण मानव पर्यन्त सम्बोधन सहज है । यह सामाजिक अखण्डता सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में सार्थक है ।

सम्बन्धों की पहचान के साथ ही निर्वाह प्रवृत्ति उदय होती है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:113)**

- सामान्य व महत्वाकाँक्षी उत्पादन **सेवा** रत हर नर–नारी अपने श्रम मूल्य का मूल्यांकन करना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:120)**
- उत्पादन के साथ विनिमय अनिवार्य है । आवश्यकता से अधिक उत्पादन विनिमय व्यवस्था का आधार है ।

हर समझदार मानव अपने द्वारा किये गये व्यवहार, उत्पादन व **सेवा** का मूल्यांकन करे जिसमें परिवार जनों की सहमति होना आवश्यक है । यह परिवार व्यवस्था जिसमें हर नर–नारी मानवत्व सहित व्यवस्था सहज प्रमाण है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:137)**

- हर परिवार का अपने–अपने निवास व दरवाजा सड़क को पवित्र एवं हरियाली शोभनीय रूप में बनाये रखना कर्तव्य।

आये हुए आगन्तुकों, अपरिचितों का परिचय प्राप्त करना कर्तव्य।

आगंतुक :– अपरिचित व्यक्ति की उपस्थिति अपेक्षाओं के अनुसार में पहचानना, मार्गदर्शन ।

अभ्यागत :– अभ्युदयार्थ आमंत्रित नर–नारी का आगमन, सम्मान विधि से स्वागत करना ।

अतिथि :– आतिथ्यार्थ आवाहित नर–नारियों का आगमन में **सेवा**, सम्मान विधि से स्वागत करना ।

आतिथ्य :– शिष्टता सहित अपने वस्तु व **सेवा** का अर्पण–समर्पण। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:200)**

- श्रम–कार्य हर नर–नारी में–से–के लिये स्वस्थता समृद्धि **सेवा** के लिए आवश्यक है । **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:204)**

# सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010, मुद्रण: 2017)

- नैतिकता का मूल तत्व जो तन, मन, धन रूपी अर्थ को प्रयोजन के अर्थ में नियोजित करता है जिसे सदुपयोग कहते हैं। सदुपयोग दो अर्थों में होता है–
  1. **सेवा** और उत्पादन में तन, मन, धन का नियोजन।
  2. संबंधों के साथ प्रयोजन को सफल बनाने के लिए तन, मन, धन का अर्पण–समर्पण रूप में सदुपयोग। (अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:38)

# सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- Not found

# जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- अर्पण :–कुछ देकर लेने की विधि से अर्पण। लेने की अपेक्षा सहित श्रम,**सेवा**, नियोजन क्रिया।**(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:38)**
- संबंध निर्वाह मूल्य
  1) माता–पिता के साथ संतान का संबंध – विश्वास निर्वाह निरंतरता:–गौरव, कृतज्ञता, प्रेम पूर्वक, सरलता, सौम्यता, अनन्यता भाव विधि सहित वस्तु **सेवा** समर्पण समेत तृप्ति –समाधान प्रमाण होना।
  2) पुत्र–पुत्री (संतान का) के साथ माता–पिता अभिभावक– विश्वास निर्वाह की निरंतरता:– ममता, वात्सल्य, प्रेम, उदारता, सहजता, अनन्यता भाव, वस्तु **सेवा** समर्पण के रूप में वर्तमान होना।
  3) भाई–बहन के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहर्द्रता, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता भावपूर्वक वस्तु **सेवा** समर्पण रूप में है।
  4) गुरु शिष्य के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, उदारता भावपूर्वक वस्तु **सेवा** समर्पण रूप में वर्तमान
  5) शिष्य गुरु के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– गौरव, कृतज्ञता, प्रेम का भाव, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता का भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में है।
  6) पति–पत्नी के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सरलता, सौहार्द्रता, अनन्यता का भाव पूर्वक वस्तु **सेवा** अर्पण–समर्पण रूप में।
  7) साथी सहयोगी के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता:– स्नेह, ममता, दया सहज निष्ठा, उदारता, दायित्व का कर्तव्य सहित वस्तु व **सेवा** प्रदान करने के रूप में
  8) सहयोगी साथी के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सहजता, सरलता, सौहर्द्रता, सौजन्यता भावसहित वस्तु व **सेवा** समर्पण अर्पण रूप में है।
  9) मित्र मित्र के साथ विश्वास निर्वाह निरंतरता :– स्नेह, सम्मान, प्रेमपूर्वक निष्ठा, सौहर्द्रता, अनन्यता का भावसहित वस्तु व **सेवा** समर्पण अर्पण के रूप में।
  10) परिवार व्यवस्था में विश्वास निर्वाह की निरंतरता:– मानवीयता पूर्ण आचरण सहित संबंधों का निर्वाह समेत किया गया व्यवहार कार्य –परिवार में, से, के लिए पोषण, संरक्षण समाज गति के लिए आवश्यकता से अधिक उत्पादन संपन्नता उपयोग–सदुपयोग प्रयोजन पूर्वक व्यवस्था प्रमाण वर्तमान वैभव है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:24–25)**

# मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003 )

- Not found

# सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- **संदेश, सूचना, फ़िर अध्ययन**

संदेश, सूचना, फ़िर अध्ययन। अध्ययन के बाद रुकता नहीं है। आप–हमारे बीच में संदेश और सूचना हो गयी है – अब अध्ययन की बारी है। अध्ययन में हम कितना गतिशील हो पायेंगे, यह सोचने का मुद्दा है। अध्ययन के बिना कोई व्यक्ति विद्वान हो गया, अच्छा–पन प्रमाणित हो गया – यह हो नहीं सकता। इसके अलावा "अच्छा–पन" को व्यक्त करने की दो जगह हैं – "**सेवा**" और "श्रम" के रूप में। ज्यादा से ज्यादा बढ़िया **सेवा** कर सकते हैं, या श्रम कर सकते हैं – इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकते। इसमें भी श्रमशीलता को लोगों ने अच्छा वास्तव में माना नहीं है। श्रम को अच्छा कहा भी होगा तो औपचारिक रूप में कहा होगा। यहाँ तक कि श्रम करने वाला भी यह तय नहीं कर पा रहा है कि श्रम करना अच्छा कार्य है, या बुरा। "समझदारी" का कुछ अता–पता नहीं है, इसलिए उसकी श्रेष्ठता की कोई बात ही नहीं है।

इसलिए समझदारी को जनमानस में डालने के लिए एक प्रयोग तो किया जाए! बर्बादी के लिए आदमी ने इतने प्रयोग किए हैं, एक प्रयोग आबादी के लिए भी किया जाए। यहाँ से हम शुरू किए। इसके लिए इस दशक में हम कुछ काम किए। करने पर पता चला – हमारे थोड़े करने पर ही ज्यादा फल होता है। आबादी का फल ज्यादा विस्तार होता है, बर्बादी का फल सीमित होता जाता है। यह धरती की ही महिमा है। आदमी धरती के साथ इतना बर्बादी किया – फ़िर भी धरती हर दुर्घटना को छोटा बना कर छोड़ देती है। इसलिए हर दुर्घटना सुधर सकता है, इस जगह में हम आते हैं। इससे मैं यह आशा करता हूँ – धरती में अभी भी सुधरने की ताकत किसी न किसी अंश में रखी है। इसलिए धरती की इस ताकत को बुलंद करने के लिए अपने आबादी के प्रयोगों को बुलंद किया जाए।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७)
**https://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/10/blog-post_318.html**

(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:100)

# सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण:2013)

- **शरीर यात्रा**

शरीर को जीवन मान कर जब जीते हैं – तो यह सोच बुढापे में जा कर fail हो ही जाती है। बचपन में अभिभावकों के संरक्षण में बच्चे कुछ करते हैं, फ़िर युवावस्था में कुछ करते हैं, प्रौढावस्था में अपना जलवा दिखाते हैं, और बुढापे में चारों खाने चित्त पड़ जाते हैं। वैसे ही जैसे अखाडे में पहलवान चारों खाने चित्त गिर जाता है!

प्रश्न : बुढापे में चारों खाने चित्त होने के स्थान पर होना क्या चाहिए?

संबंधों का निर्वाह होना चाहिए। माँ–बाप को अपने घर पर ही मरना चाहिए – nursing-homes में नहीं! nursing-homes में उनके मरने का इंतज़ार करने के लिए उन्ही के बच्चे ले जाते हैं। अपने घर में अपने विश्वसनीय जनों के सान्निध्य में शरीर–त्याग करना ज्यादा अच्छा है। क्या ठीक होगा? – आप ही सोच कर तय करो।

जब तक मरणासन्न वृद्ध की साँस चलती है – आस रखो। उसकी जो सेवा की आवश्यकता है, वह कर दो। जैसे बच्चे निस्सहाय होते हैं, उनकी सेवा करके उनके माता–पिता उनको बड़े बनाते हैं... ठीक उसी तरह बुजुर्गों की आख़िरी साँसों के समय में उनकी अपेक्षाओं को पहचान कर उनकी सेवा करते रहने में क्या तकलीफ है? यह आपको करना नहीं है – यह आपकी कायरता है। विवेक पूर्वक सोचा जाए तो उसके अलावा बचने की कोई जगह नहीं है। चाहे यह देश हो, या कोई और देश हो!

चिंतन–अभ्यास शरीर यात्रा पर्यंत चलता रहता है। यह अपने घर–परिवार के लोगों के बीच आश्वस्ति पूर्वक होता है। जैसे – आपके सामने मैंने यह पूरा चिंतन व्यक्त किया। आपके सामने इस चिंतन को बनाए रखने में मुझे विश्वास होगा या नहीं?

जीवन मूलक विधि से सोचते हैं तो हम "अच्छी तरह जीने" की जगह में पहुँचते हैं। शरीर की अपनी मर्यादा है। उससे समाधान यही है – "आयु के अनुसार काम"। जैसे – कोई बच्चा पैदा होते ही तो pilot का काम करना नहीं शुरू कर देता। किसी आयु में ही कर पाता है। आयु शरीर की ही होती है। आयु के अनुसार शरीर काम करने योग्य होता है। जीवन की कोई आयु नहीं होती। जीवन में केवल जागृति या भ्रम ही होता है।

जागृति के लिए मनुष्य सदा से ही प्रयास रत रहा है। पहले भी था, आज भी है, आगे भी रहेगा। प्रयास तो रहा है – विधिवत हो या विधि को छोड़ कर हो। "मध्यस्थ–दर्शन का अध्ययन" विधि–वत प्रयास के लिए एक प्रस्ताव है।

हर अभिभावक अपने में जो त्रुटियां मानता हैं, वे अपने बच्चों में न हों – यह सोचता है। यह इस बात की गवाही है – मनुष्य स्वयं जागृत न हो, तो भी उसकी आगे परम्परा से जागृति की अपेक्षा रहती है।

जीवन के "सार ज्ञान" को संसार में आवंटित करके शरीर की यात्रा को पूरा करना हर व्यक्ति चाहता है। जिसको भी वह "सार" माना रहता है। इसी से मनुष्य जाति एक पीढी से दूसरा पीढी enrich होता आया है। इसी विधि से मनुष्य पहले जीव–चेतना में चार विषयों की सीमा से पाँच संवेदनाओं की सीमा में आया। अब पाँच संवेदना से मानव–चेतना का रास्ता (अध्ययन विधि) बन गया है। मानव–चेतना में संज्ञानीयता पूर्वक संवेदनाएं नियंत्रित होती हैं। इस प्रस्ताव की मनुष्य परम्परा से coupling केवल संवेदनाओं के part में है। संवेदनाओं के part में हम जुड़े हैं – संवेदनाएं नियंत्रित होने की जगह के लिए। और कुछ भी नहीं है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७, अमरकंटक)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/03/blog-post_10.html

(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:189)